श्रीगोस्वामी नारायणदास नाभाजी विरचित

श्रीभक्तमाल

(मूलार्थबोधिनी टीका सहित)

© 2014 JRHU - All rights reserved

टीकाकार

धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य

संपादक

डॉ. रामाधार शर्मा, नित्यानन्द मिश्र, मनीषकुमार शुक्ल

प्रकाशक

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलाङ्ग विश्वविद्यालय

कर्वी, चित्रकूट, उत्तर प्रदेश, भारत – २१०२०४

दूरभाष – (९१) (५१९८) २२४४१३, २२४४८१, २२४४२६३

प्रथम संस्करण (२१०० प्रतियाँ)

मकर संक्रान्ति विक्रम संवत् २०७०

(१४ जनवरी २०१४ ईस्वी)

ISBN 978-93-82253-04-4

© सर्वाधिकार

टीकाकार के अधीन

न्यौछावर

₹ ४००/– (चार सौ रुपए मात्र)

पुस्तक प्राप्ति स्थान

(१) जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलाङ्ग विश्वविद्यालय

कर्वी, चित्रकूट, उत्तर प्रदेश, भारत – २१०२०४

(२) श्रीतुलसीपीठ सेवा न्यास, आमोदवन

चित्रकूट, सतना, मध्य प्रदेश, भारत – ४८५३३१

अक्षरसंयोजक

नित्यानन्द मिश्र

मुद्रक

नीलम मुद्रणालय, ६६/८७ए, कच्छियाना मोहल

कानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत – २०८ ००१

दूरभाष – (९१) (५१२) २१५०१६३, (९१) ९०४४२ २६६४९

© 2014 JRHU - All rights reserved

विषयसूची

संपादकीय १

प्राक्कथन ५

१ पूर्वार्ध १९

पद १–४: मङ्गलाचरण एवं श्रीनाभाजीका परिचय १९

पद ५: भगवान्‌के चौबीस अवतार २३

पद ६: श्रीरामके चरणचिह्न ३०

पद ७: प्रधान द्वादश भक्त ३५

पद ८: भगवान् नारायणके सोलह पार्षद ३७

पद ९: हरिवल्लभ ३९

पद १०: जिनके हरि नित उर बसैं ५०

पद ११: भक्तोंकी चरणधूलियाचना ५३

पद १२: जे जे हरिमाया तरे ५९

पद १३: नौ योगेश्वर ६४

पद १४: नवधा भक्तिके नौ आदर्श ६४

पद १५: भगवत्प्रसादके स्वादज्ञाता ६६

पद १६: भगवद्ध्यानपरायण ऋषिगण ६७

© 2014 JRHU - All rights reserved

पद १७: अष्टादश पुराण ६८
पद १८: अष्टादश स्मृति ७०
पद १९: श्रीरामके मन्त्री ७१
पद २०: श्रीरामके सहचर यूथपति ७१
पद २१: नौ नन्द ७२
पद २२: श्रीराधाकृष्णपरिकर ७३
पद २३: श्रीकृष्णके अन्तरङ्ग सेवक ७४
पद २४: सप्तद्वीपके दास ७४
पद २५: जम्बूद्वीपके भक्त ७५
पद २६: श्वेतद्वीपके भक्त ७६
पद २७: अष्ट द्वारपाल सर्प ७७

२ उत्तरार्ध ७९
पद २८: चार संप्रदाय और आचार्य ७९
पद २९: चतुःसंप्रदायविवरण ८२
पद ३०: भक्तिवितान ८३
पद ३१: जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य ८४
पद ३२: चार दिग्गज महंत ८५
पद ३३: श्रीलालाचार्य ८५
पद ३४: श्रीपादपद्माचार्य ८६
पद ३५: श्रीरामानन्दपद्धति ८७
पद ३६: जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य ९०
पद ३७: श्रीअनन्ताचार्य और शिष्य ९२
पद ३८: श्रीकृष्णदास पयहारी ९३
पद ३९: श्रीपयहारीजीके शिष्य ९५

© 2014 IRHU - All rights reserved

पद ४०: श्रीकील्हदासजी ९६
पद ४१: श्रीअग्रदासजी ९६
पद ४२: जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्यजी ९७
पद ४३: श्रीनामदेवजी १००
पद ४४: श्रीजयदेवजी १०२
पद ४५: श्रीधरीटीकाकार श्रीधराचार्यजी १०४
पद ४६: श्रीबिल्वमङ्गलजी १०७
पद ४७: श्रीविष्णुपुरीजी १०९
पद ४८: श्रीज्ञानदेवजी और श्रीवल्लभाचार्यजी ११०
पद ४९: प्रेम की प्रधानता ११२
पद ५०: भक्तनिष्ठा ११३
पद ५१: दो भक्तोंके आशय ११५
पद ५२: भगवान्‌के द्वारा भक्तोंकी वाणी का सत्यापन ११७
पद ५३: भक्तोंके संग भगवान् १२०
पद ५४: भक्तोंके प्रति आश्चर्य १२३
पद ५५: भगवान् रामकी कृपा १२५
पद ५६: वेषनिष्ठ राजा १२६
पद ५७: अन्तर्निष्ठ राजा १२७
पद ५८: गुरुवचनविश्वास १२८
पद ५९: श्रीरैदासजी १२९
पद ६०: श्रीकबीरदासजी १३२
पद ६१: श्रीपीपाजी १३५
पद ६२: श्रीधनाजी १३८
पद ६३: श्रीसेनजी १३९

© 2014 JKHU - All rights reserved

पद ६४: श्रीसुखानन्दजी १४०
पद ६५: श्रीसुरसुरानन्दजी १४२
पद ६६: श्रीसुरसुरीजी १४३
पद ६७: श्रीनरहर्यानन्दजी १४४
पद ६८: श्रीपद्मनाभजी १४५
पद ६९: श्रीतत्वाजी और श्रीजीवाजी १४६
पद ७०: श्रीमाधवदासजी १४७
पद ७१: श्रीरघुनाथगुसाईंजी १४८
पद ७२: श्रीनित्यानन्दजी और श्रीकृष्णचैतन्यजी १४९
पद ७३: श्रीसूरदासजी १५०
पद ७४: श्रीपरमानन्ददासजी १५१
पद ७५: श्रीकेशवभट्टजी १५२
पद ७६: श्रीभट्टजी १५३
पद ७७: श्रीहरिव्यासदेवजी १५३
पद ७८: श्रीदिवाकरजी १५४
पद ७९: श्रीविट्ठलनाथजी १५५
पद ८०: श्रीविट्ठलगोस्वामीजीके सात पुत्र १५६
पद ८१: श्रीकृष्णदासजी १५७
पद ८२: श्रीवर्धमानगंगलजी १५८
पद ८३: श्रीक्षेमगुसाईंजी १५९
पद ८४: श्रीविट्ठलदासजी १६०
पद ८५: श्रीहरिरामहठीलेजी १६१
पद ८६: श्रीकमलाकरभट्टजी १६१
पद ८७: श्रीनारायणभट्टजी १६२

© 2014 JRHU - All rights reserved

पद ८८: श्रीव्रजवल्लभजी १६२
पद ८९: श्रीसनातनगोस्वामीजी और श्रीरूपगोस्वामीजी १६३
पद ९०: श्रीहितहरिवंशगोस्वामीजी १६४
पद ९१: श्रीहरिदासजी १६५
पद ९२: श्रीव्यासजी १६६
पद ९३: श्रीजीवगोस्वामीजी १६७
पद ९४: श्रीवृन्दावनमाधुरीके रसिक भक्त १६८
पद ९५: श्रीरसिकमुरारिजी १६९
पद ९६: भवप्रवाहके अवलम्बन भक्त १७०
पद ९७: कलियुगके कल्पवृक्ष भक्त १७२
पद ९८: कलियुगके कामधेनु भक्त १७३
पद ९९: कलियुगके चिन्तामणि भक्त १७४
पद १००: कलियुगके दिग्गज भक्त १७४
पद १०१: तीन धामोंके भगवत्सेवक भक्त १७५
पद १०२: भगवद्भक्त कवि १७६
पद १०३: मथुरानिवासी भक्त १७६
पद १०४: कलियुगकी भक्तराज महिलाएँ १७७
पद १०५: श्रीहरिके सम्मत भक्त १७८
पद १०६: भक्त भगवान्‌से अधिक १७९
पद १०७: श्रीलाखाजी १८०
पद १०८: श्रीनरसीभक्तजी १८१
पद १०९: श्रीयशोधरजी १८३
पद ११०: श्रीनन्ददासजी १८४
पद १११: श्रीजनगोपालजी १८५

© 2014 JRHU - All rights reserved

पद ११२: श्रीमाधवकी लोटाभक्ति १८५
पद ११३: श्रीअंगदजी १८६
पद ११४: राजा श्रीचतुर्भुजजी १८७
पद ११५: श्रीमीराबाईजी १८८
पद ११६: राजा श्रीपृथ्वीराजजी १८९
पद ११७: भगवद्भक्त राजागण १९०
पद ११८: खेमालवंशविवरण १९१
पद ११९: श्रीरामरयनजी १९१
पद १२०: श्रीरामरयनजीकी पत्नी १९२
पद १२१: श्रीकिशोरसिंहजी १९३
पद १२२: राजा श्रीहरिदासजी १९४
पद १२३: श्रीचतुर्भुजदासजी १९४
पद १२४: श्रीकृष्णदास चालकजी १९५
पद १२५: श्रीसंतदासजी १९६
पद १२६: श्रीसूरदासमदनमोहनजी १९६
पद १२७: श्रीकात्यायनीबाईजी १९७
पद १२८: श्रीमुरारिदासजी १९८
पद १२९: श्रीभक्तमालके सुमेरु गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी १९८
पद १३०: श्रीमानदासजी २०९
पद १३१: श्रीगिरिधरजी २१०
पद १३२: श्रीगोकुलनाथजी २१०
पद १३३: श्रीबनवारीदासजी २११
पद १३४: श्रीनारायणमिश्रजी २१२
पद १३५: श्रीनारायणदासजी २१२

© 2014 JRHU - All rights reserved

पद १३६: श्रीवामनहरिदासजी २१३
पद १३७: श्रीपरशुरामदेवाचार्यजी २१४
पद १३८: श्रीगदाधरभट्टजी २१५
पद १३९: चौदह भक्तचारण २१७
पद १४०: कविराज राजा श्रीपृथ्वीराजजी २१८
पद १४१: चन्द्रवंशी श्रीशिवाजी २१९
पद १४२: भक्तरानी रत्नावतीजी २२०
पद १४३: श्रीजगन्नाथजी २२१
पद १४४: श्रीमथुरादासजी २२२
पद १४५: श्रीनर्तकनारायणदासजी २२२
पद १४६: एते जन भए भूरिदा २२३
पद १४७: श्रीनाभाजीके यजमान भक्त २२४
पद १४८: श्रीनागाचतुरदासजी २२५
पद १४९: मधुकरिया भक्त २२५
पद १५०: श्रीअग्रदासके प्रसिद्ध शिष्य २२७
पद १५१: श्रीटीलाजी और श्रीलाहाजीकी पद्धति २२७
पद १५२: श्रीकान्हरजीका महोत्सव २२८
पद १५३: श्रीनीवाजी और श्रीखेतसीजी २२९
पद १५४: श्रीतोमरभगवानजी २३०
पद १५५: श्रीजसवन्तजी २३१
पद १५६: श्रीतुलाधारहरिदासजी २३१
पद १५७: भक्तयुगलजोड़ी २३२
पद १५८: श्रीकील्हदासजीके शिष्य २३३
पद १५९: श्रीनाथभट्टजी २३४

© 2014 JRHU - All rights reserved

पद १६०: श्रीकरमैतीबाई २३४
पद १६१: श्रीखड्गसेनजी २३५
पद १६२: श्रीगंगग्वालजी २३६
पद १६३: श्रीदिवाकरश्रोत्रियजी २३७
पद १६४: श्रीलालदासजी २३८
पद १६५: श्रीमाधवग्वालजी २३९
पद १६६: श्रीप्रयागदासजी २३९
पद १६७: श्रीप्रेमनिधिजी २४१
पद १६८: श्रीराघवदासजी दुबले २४१
पद १६९: दासत्वके चौकी भक्त २४२
पद १७०: सुबल अबला भक्तगण २४३
पद १७१: श्रीकान्हरदासजी २४४
पद १७२: श्रीकेशवदासजी और श्रीपरशुरामदासजी २४४
पद १७३: श्रीकेवलरामजी २४५
पद १७४: श्रीआसकरणजी २४६
पद १७५: निष्किञ्चनभक्तभजक श्रीहरिदासजी २४७
पद १७६: श्रीकल्याणदासजी २४८
पद १७७: श्रविट्ठलदास रैदासीजी २४९
पद १७८: भारी भक्त २५०
पद १७९: वेषनिष्ठ राजा श्रीहरिदासजी २५१
पद १८०: श्रीकृष्णदासस्वर्णकारजी २५२
पद १८१: भक्त संन्यासीगण २५३
पद १८२: श्रीद्वारकादासजी २५४
पद १८३: श्रीपूरणदासजी २५५

© 2014 JRHU All rights reserved

पद १८४: श्रीलक्ष्मणभट्टजी २५५
पद १८५: सिंहको मांसदाता श्रीकृष्णदास पयहारीजी २५६
पद १८६: श्रीगदाधरदासजी २५७
पद १८७: स्वामी श्रीनारायणदासजी २५७
पद १८८: श्रीभगवानदासजी २५८
पद १८९: श्रीरामभक्त श्रीकल्याणदासजी २५९
पद १९०: श्रीसोभूरामजीके सहोदर दो भ्राता २५९
पद १९१: श्रीकृपालकान्हरजी २६०
पद १९२: प्रथम भक्तमाली श्रीगोविन्ददासजी २६१
पद १९३: राजा श्रीजगतसिंहजी २६२
पद १९४: श्रीगिरिधरग्वालजी २६२
पद १९५: श्रीगोपालीमाँ २६३
पद १९६: श्रीयुत श्रीरामदासजी २६४
पद १९७: श्रीरामरायजी २६४
पद १९८: श्रीभगवंतमुदितजी २६५
पद १९९: श्रीभक्तमालविश्रामभक्ता श्रीलालमतीजी २६६
पद २००: सबसे श्रेष्ठ हरिभक्त २६६
पद २०१: भगवत्प्रिय भक्त सुयश २६८
पद २०२: संतचरितश्रवणमें आस्तिकता २६८
पद २०३-२१४: श्रीभक्तमालका उपसंहार २६९

श्रीभक्तमालजीकी आरती २७३

सङ्केताक्षरसूची २७५

पदानुक्रमणिका २७७

© 2014 JRHU - All rights reserved

© 2014 JRHU - All rights reserved

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

संपादकीय

रामभद्र गुरुदेव पर कृपा भक्त हरि की परी॥
मानस को कल हंस भक्तकुल बारिधि सितकर।
बिबुध राष्ट्र ब्रज गिरा दच्छ कबिकमल दिवाकर॥
ब्रह्मसूत्र उपनिषद भाष्यकर गीता मधुकर।
गानबिधा गंधर्ब सकल बिद्या को आकर॥
मूल अर्थ बोधिनि ललित भक्तमाल टीका करी।
रामभद्र गुरुदेव पर कृपा भक्त हरि की परी॥

गोस्वामी श्रीनारायणदास नाभाजीद्वारा विरचित श्रीभक्तमाल भारतीय भक्तिपरम्पराकी एक अमूल्य निधि होनेके साथ-साथ भारतीय भाषा साहित्यका एक अग्रगण्य सारस्वत पुष्प भी है। लौकिक मालामें पुष्पों अथवा रत्नोंका, सूत्रका, सुमेरुका और फुँदनेका अपना-अपना महत्त्व है – और इन चारोंके रुचिकर संयोगसे ही आकर्षक मालाका निर्माण संभव है। श्रीभक्तमाल ऐसी दिव्य माला है जिसमें भक्तगण ही पुष्प अथवा रत्न हैं, परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा भक्ति ही सूत्र है, गोस्वामी तुलसीदास सरीखे गुरूपम संत अथवा भक्तिसिद्धान्तका दान देनेवाले सद्गुरुदेव ही सुमेरु हैं, और स्वयं पद्मपत्राक्ष श्रीरामकृष्णनारायणाभिन्न भगवान् ही फुँदना हैं। चारों ही श्रेष्ठ हैं और भक्तमालकार अपने प्रथम दोहेमें ही चारोंको अभिन्न बताते हैं, यथा –

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।

(भ.मा. १)

तथापि मालाका नामकरण तो पुष्पों अथवा रत्नोंके आधारपर ही होता है, यथा वनमाला, वैजयन्तीमाला, तुलसीमाला, मणिरत्नमाला, इत्यादि। इसीलिये इस ललित कृतिका नाम नाभाजीने **भक्तमाल** रखा है।

एक-साथ भक्तमालके मूलपाठके सरल अर्थों और गूढ भावोंको प्रकाशित करने वाली गुरुदेव

© 2014 JRHU - All rights reserved

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य कृत **मूलार्थबोधिनी टीका**का प्रथम संस्करण पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हम अनिर्वचनीय कृतकृत्यताका अनुभव कर रहे हैं। विगत मास अर्थात् दिसंबर २०१३में ही इस विशद टीकाका ऋतम्भराप्रज्ञासंपन्न गुरुदेवने मात्र पन्द्रह घण्टोंमें प्रणयन किया। यह कोई आश्चर्यका विषय नहीं, अपितु माता सरस्वतीके अनुग्रह और प्रभु श्रीसीतारामकी कृपाका प्रत्यक्ष प्रमाण है। जैसे गुरु श्रीअग्रदेवके आशीर्वादसे अनेकानेक भूत, वर्तमान और भावी भक्तोंके चरित्र श्रीनाभाजीके हृदयमें स्वतः प्रकाशित हो गए थे, उसी प्रकार रामानन्द संप्रदायकी आद्यगुरु भगवती सीताजीके आशीर्वादसे नाभाजी द्वारा गुम्फित अक्षरोंके मूलार्थ गुरुदेवके हृदयमें स्वतः स्फुरित हुए हैं। स्वयं गुरुदेवने छठे पदकी टीकामें कहा है कि प्रभु श्रीरामके चरणोंमें २२ नहीं अपितु २४ चिह्न उनके ध्यानमें स्फुरित हुए हैं, जिनकी व्याख्या नाभाजीने की है। मूलार्थबोधिनीके अनुशीलनके समय अनेक स्थानोंपर पाठकगण भगवदीय प्रेरणासे हुई इस दिव्य स्फुरणाका अनुभव करेंगे ही।

अस्तु। प्रणयनके पश्चात् इस टीकाका केवल दो सप्ताहोंमें पुस्तकाकार होना भी श्रीराघवकृपा और गुरुकृपाका ही परिणाम है। टीकाके प्रकाशनमें अत्यन्त महनीय योगदान दिया है हापुड़निवासी श्रीमोहन गर्गजीने। यह एक दिव्य संयोग है कि श्रीमोहन गर्गजीने मूलार्थबोधिनीके प्रणयनकी समाप्तिके दिन ही गुरुदेवसे मन्त्रदीक्षा ली है, यद्यपि गुरुदेवकी सारस्वत सेवा वे पहलेसे करते आए हैं। श्रीमोहनगर्गने बड़ी ही दक्षताके साथ ग्रन्थके टङ्कण और लिपिपरिमार्जनमें जो योगदान दिया है, उसके बिना कदाचित् ही यह संस्करण इतने अल्प समयमें मुद्रित हो पाता। आवरण पृष्ठका प्रारूप तैयार किया है गुजरातके रहनेवाले और बेंगलूरुमें सेवारत श्रीमौलिक सूचकजीने। पुस्तकका मुद्रण कानपुरनिवासी श्रीअजय वर्माके **नीलम मुद्रणालय**में हुआ है, जहाँसे पिछले वर्ष गुरुदेव कृत श्रीहनुमानचालीसाकी **महावीरी व्याख्या** छपी थी।

प्रस्तुत संस्करणमें भक्तमालका मूलपाठ संपादकोंने यथामति भिन्न-भिन्न संस्करणोंके आधारपर लिया है। भक्तमालका कोई प्रामाणिक संस्करण हमें इस समयमें उपलब्ध न हो पाया, और हमारे द्वारा संदर्भित संस्करणोंमें कुछ स्थानोंपर पाठभेद हैं। फलस्वरूप पाठकोंको कुछ स्थलोंपर प्रचलित प्रति से पाठभेद मिल सकता है। भक्तमालपर सुविशाल **भक्तिकृपाभाष्य** गुरुदेवका संकल्प है, और हमारी आशा है कि गुरुदेव द्वारा भक्तिकृपाभाष्यके प्रणयनके साथ-साथ भक्तमालके प्रामाणिक पाठका संपादन भी होगा।

संभव है प्रस्तुत संस्करणमें संपादकीय त्रुटियाँ रह गईं हों। यदि ऐसा हुआ है तो पाठक भक्त उन्हें

© 2014 JRHU - All rights reserved

हम अल्पज्ञ संपादकोंके मानवजन्य भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटवका परिणाम समझकर हमें क्षमा करें और शीघ्रातिशीघ्र वैद्युत पत्राचार (e-mail) द्वारा namoraghavay@gmail.com पतेपर सूचित करें ताकि पुस्तकके अन्तर्जाल संस्करण (online edition) और आगामी मुद्रित संस्करणोंमें उनका निवारण हो सके।

हम गुरुदेवकी इस मनोहारिणी टीकाको भक्तों और पाठकोंको विनीत भावसे समर्पित करते हैं और आशा करते हैं कि –

गायं गायं भक्तमालं सरागं पाठं पाठं रामभद्रार्यटीकाम्।
स्मारं स्मारं भक्तपादाब्जधूलिं जीवा लोके भूरिभाग्या भवन्तु॥

इति निवेदयन्ति
भक्तानां वशंवदाः
डॉ. रामाधार शर्मा
नित्यानन्द मिश्र
मनीषकुमार शुक्ल

मकर संक्रान्ति
विक्रम संवत् २०७०

© 2014 JRHU - All rights reserved

© 2014 JRHU - All rights reserved

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

प्राक्कथन

श्रीमद्ब्रह्मसमारम्भां सम्प्रदायार्यमध्यमाम्।
श्रीलालमतीपर्यन्तां वन्दे भक्तपरम्पराम्॥

श्रीअग्रदास(अग्रदेवाचार्यजी)के सुयोग्य, भगवत्साक्षात्कारी, अन्तस्तलपर्यन्त प्रवेश करने वाले श्रीनारायणदास गोस्वामी नाभाजीकृत श्रीभक्तमालको आज कौन नहीं जानता? अपितु ये कहें तो कोई अतिरञ्जना नहीं होगी कि श्रीरामचरितमानसके पश्चात् यदि हिन्दी साहित्यमें किसीको भाषा-सौष्ठव, काव्य-चातुरी, संप्रेषणशीलता एवं भगवद्गुणगानके नैपुण्यका विरुद प्राप्त है तो वे हैं १००८ श्रीनारायणदास गोस्वामी नाभाजी महाराज कृत श्रीभक्तमालजी। यहाँ यह भी कहना असाम्प्रतिक नहीं होगा कि गोस्वामी तुलसीदासजीकृत श्रीरामचरितमानसजीके प्राकट्यके पश्चात् तत्काल ही श्रीभक्तमालजीका आविर्भाव हो चुका था। श्रीभक्तमालके सुमेरुके रूपमें गोस्वामी तुलसीदासजीको ही नाभाजीने अपने श्रीभक्तमालमें प्रतिष्ठापित किया और यह भी स्पष्ट किया कि उनके श्रीभक्तमालकी रचनाके पूर्व ही श्रीरामचरितमानसजीका प्रणयन हो चुका था। इसलिये वे कहते हैं –

त्रेता काव्य निबंध करी सत कोटि रामायन।
इक अच्छर उद्धरे ब्रह्महत्यादि पलायन॥
अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि व्रतधारी॥
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो।
कलि कुटिल जीव निस्तारहित वाल्मीकि तुलसी भयो॥

(भ.मा. १२९)

यहाँ प्रयुक्त चार भूतकालिक क्रियाओंको देखकर – **त्रेताकाव्य निबंध करी**, **बहुरि लीला विस्तारी**, **सुगमरूप नौका लयो** और **बाल्मीकि तुलसी भयो** – यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीभक्तमालकी रचनाके पूर्व ही श्रीरामचरितमानसजीका गोस्वामीजीके माध्यमसे आविर्भाव हो चुका

© 2014 JRHU. All rights reserved

था। और क्योंकि नाभाजीको गोस्वामी तुलसीदासजीके प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी, इससे भी यह निश्चय हो जाता है कि श्रीभक्तमालजीकी रचना–प्रकृति श्रीरामचरितमानसजीकी रचना–धर्मितासे बहुत हिस्सोंमें मिलती जुलती है। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी अवधी भाषामें रचना करते हुए भी गँवारू अवधी भाषाके प्रयोगके पक्षमें नहीं दिखते, उनकी अवधी भाषा प्राञ्जल, सुसंस्कृत और बहुत परिष्कृत होती है, गोस्वामीजी जायसी की तरह असभ्य शब्दोंका प्रयोग कभी नहीं करते। ठीक उसी प्रकारका स्वभाव श्रीभक्तमालजीके रचनाकार नाभाजीका है। संतोंके नाम, जैसे गाँवमें कहे गए, उनको वैसे ही लिखनेमें वे किसी प्रकार हिचकिचाते नहीं हैं, परन्तु उनके गुणोंके प्रस्तुतीकरणमें गोस्वामीजीकी ही भाँति श्रीनाभाजी भी विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ शब्दोंका प्रयोग करते हुए दिखते हैं। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी कहीं–कहीं संस्कृत शब्दावलीके प्रयोगमें संकोच नहीं करते, उदाहरणतः –

हरि अवतार हेतु जेहिं होई। इदमित्थं कही जात न सोई॥

(मा. १.१२१.२)

यहाँ **इदमित्थं** शब्दका प्रयोग कितना सुन्दर लग रहा है। इसी क्रममें, मानस अयोध्याकाण्डके २२५वें दोहेमें गोस्वामी तुलसीदासजी हिन्दीके प्रयोगोंके साथ संस्कृतका सप्तमी बहुवचनान्त प्रयोग करके भी रसभङ्ग नहीं प्रत्युत रसरङ्ग करते हुए दिख रहे हैं –

भरतप्रेम तेहिं समय जस तस कहि सकइ न शेषु।
कबिहिं अगम जिमि ब्रह्मसुख अह मम मलिन जनेषु॥

(मा. २.१२५)

यहाँ **जनेषु** शब्द काव्यमें रसभङ्ग नहीं कर रहा है। इसी क्रममें युद्धकाण्डके दोहा क्रमाङ्क १०४के छन्दमें –

आजन्मते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयम्।
तुमहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम्॥

(मा. ६.१०४.१३)

यहाँ **नमामि**, **ब्रह्म**, **निरामयम्** – ये तीनों संस्कृत शब्द कितने रुचिकर लग रहे हैं। आगे युद्धकाण्डके ही १०७वें दोहेके छन्दमें गोस्वामीजी कितने सुन्दर संस्कृत शब्द **किमपि**का प्रयोग कर रहे हैं – **का देउँ तोहि त्रैलोक महँ कपि किमपि नहिं बानी समा** (मा. ६.१०७.९)। और आगे चलते हैं – **रनजीति रिपुदल बन्धुजुत पश्यामि राममनामयम्** (मा. ६.१०७.९)। यहाँपर

© 2014 JRHU - All rights reserved

पश्यामि, **रामम्**, **अनामयम्** – ये तीनों शब्द संस्कृतके हैं पर उनसे यहाँ रसभङ्ग नहीं हो रहा है। इसी प्रकार गोस्वामीजीके पर:शत संस्कृत प्रयोग हिन्दी प्रयोगोंके साथ रह कर भी काव्यमें न तो रसभङ्ग कर रहे हैं और न ही अनौचित्य। ठीक इसी प्रकारकी प्रकृति श्रीभक्तमालकारकी भी है। वे भी यथावसर संस्कृत प्रयोगोंको श्रीभक्तमालमें स्थान देते हुए संकोचका अनुभव नहीं करते। जैसे पैंतीसवें पदमें जब रामानन्दाचार्यकी पद्धति-परम्पराको प्रस्तुत कर रहे हैं, तब नाभाजी कहते हैं – **तस्य राघवानंद भये भक्तनको मानंद** (भ.मा. ३५)। यहाँ **तस्य** शब्द कितना सुन्दर और कितना रुचिकर लग रहा है। इसी क्रममें आगे जब संतोंके गुणोंका परिचय प्रस्तुत करते हैं तो वे संस्कृत-समासनिष्ठ शब्दोंके प्रयोगोंमें भी किसी प्रकारका संकोच नहीं करते। जैसे उनका छिहत्तरवाँ पद द्रष्टव्य है –

श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मनमोद घन॥
मधुरभाव रस मिलित ललित लीला सुवलित छवि।
निरखत हरषत हृदय प्रेम बरषत सुकलित कवि॥
भव निस्तारन हेतु देत दृढ भक्ति सबनि नित।
जासु सुजस ससि उदय हरत अति तम भ्रम श्रम चित॥
आनंदकंद श्रीनंदसुत श्रीवृषभानुसुता भजन।
श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मनमोद घन॥

(भ.मा. ७६)

एवंविध शताधिक संस्कृत प्रयोग श्रीभक्तमालमें उपस्थित होकर उसकी रचनाधर्मितामें चार-चाँद लगा देते हैं। श्रीभक्तमालकी भाषा **काव्यभाषा** है, जो भक्तिकालमें प्रसिद्ध थी। यहाँ काव्यभाषा कहनेका मेरा तात्पर्य यह है कि भक्तिकालमें भक्त-कवियोंने एक ऐसी काव्यभाषाका निर्माण किया था, जो अवधी और ब्रज दोनोंका मिश्रण थी। वह न तो केवल अवधी थी और न केवल ब्रज। हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि जो जिस क्षेत्रमें उत्पन्न हुआ उस क्षेत्रकी भाषाका उसपर उतना अधिक प्रभाव पड़ा, यद्यपि सबकी काव्यभाषा एक ही थी। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीकी भाषा यही थी जो नाभाजीकी है, परन्तु अन्तर यह है कि गोस्वामीजी बुन्देलखण्डी वातावरणमें अधिक रहे और उनका अवधीसे बहुत संबन्ध था, इसलिये उनकी भाषा काव्यभाषा होकर भी अवधीप्रधान हुई और अवधीमें भी बुन्देलखण्डके शब्द गोस्वामीजीकी रचनामें अधिकतर आये, जैसे **करिहउँ** (मा. २.६७.२ आदि), **जैहउँ** (मा. १.५९.१, ६.६१.११), **लैहउँ** (मा. १.१८७.२), **तहूँ बंधु सम बाम** (मा. १.२८२),

© 2014 URHD - All rights reserved

महूँ (मा. २.२६० आदि), **छुहे पुरट घट सहज सुहाए** (मा. १.३४६.६) इत्यादि। ठीक उसी प्रकार नाभाजी राजस्थानमें जन्मे और ब्रजकी परम्परासे उनका बहुत अधिक संबन्ध रहा। इससे उनकी काव्यभाषामें ब्रजभाषा और राजस्थानीका अधिक प्रभाव पड़ गया। परन्तु इससे यह नहीं कहना चाहिए कि उन्होंने काव्यभाषाको छोड़ा। हाँ, शब्दोंका प्रयोग प्रत्येक कविकी अपनी आन्तरिक भाषाके साम्पर्किक वातावरणका धर्म बन जाता है। इसीलिये जहाँ गोस्वामीजी **खींचने**के अर्थमें बुन्देलीशब्द **खैंच**का प्रयोग करते हैं, वहीं नाभाजी **ऐंच** शब्दका प्रयोग करते हैं। उदाहरणतःगोस्वामीजी कहते हैं – **खैंचि धनुष शर शत संधाने** (मा. ६.७०.७) और **खैंचि शरासन छाड़े सायक** (मा. ६.९२.६), वहीं नाभाजी कहते हैं – **बिमुखनको दियो दण्ड ऐंचि सन्मारग आने** (भ.मा. ४२) और **ऐसे लोग अनेक ऐंचि सन्मारग आने** (भ.मा. १७३)। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लेना चाहिए। श्रीभक्तमालका भाषा-धर्म श्रीरामचरितमानसकी ही भाँति सुसंस्कृत और परिष्कृत है। नाभाजीकी शैली भी गोस्वामी तुलसीदासजी जैसी ही है। इसीलिये तो दोनोंकी बहुत पटती होगी, तभी तो श्रीभक्तमालकारने अपनी श्रीभक्तमालमें तुलसीदासजीको सुमेरुके रूपमें प्रतिष्ठापित किया है।

श्रीभक्तमाल संत-साहित्यका सर्वप्रथम और अप्रतिम संस्करण है। इसमें नाभाजीने चारों युगोंके भक्तोंकी न्यूनाधिक चर्चाकी है। श्रीभक्तमालके प्रथम चार दोहे मङ्गलाचरण और रचना-प्रयोजनके हेतु प्रस्तुत किये गए हैं। पाँचवें पदसे भक्तोंकी चर्चाका प्रारम्भ होता है। श्रीभक्तमालके पदोंकी कुल संख्या २१४ है। इनमें चार दोहे प्रारम्भमें (पद १से ४), एक दोहा बीचमें (पद २९), और बारह दोहे (पद २०३से २१४) अन्तमें हैं। अर्थात् उपक्रममें चार दोहे, अभ्यासमें एक दोहा, और उपसंहारमें बारह दोहे हैं। कुल मिलाकर सत्रह दोहे और एक कुण्डलिया (पद १८५) है, और शेष सभी छप्पय हैं। उपसंहारमें ही तीन छप्पय (पद २००से २०२) भी हैं। इस प्रकार उपक्रम और उपसंहारको छोड़कर पाँचवें पदसे पद संख्या १९९ पर्यन्त नाभाजीने भक्तोंका यशोगान किया है। उन्होंने २४ अवतारों और भगवान् श्रीरामके २४ चरणचिह्नोंका स्मरण करके मूल रूपसे सातवें पदसे भक्तोंके यशोगानको अपना वर्णनीय विषय बनाया। सातवें पदमें **ब्रह्माजी**से प्रारम्भ किया और १९९वें पदमें परमभागवती **श्रीलालमती माताजी**के यशोगानपर श्रीभक्तमालको विश्राम दिया।

इस वर्णन पद्धतिको देखकर ऐसा लगता है कि नाभाजीके मनमें वर्तमान भारतका स्वरूप और उसकी विघटन-परम्परा तथा उसकी दुर्व्यवस्थाका ताण्डव प्रतिबिम्बित हो रहा होगा। उनको यह भली-भाँति संज्ञान रहा ही होगा कि भारत धीरे-धीरे अपनी परम्पराओंसे दूर हटता जा रहा है। नाना

© 2014 JPHD - All rights reserved

प्रकारकी विघटनकारी शक्तियाँ भारतीय व्यवस्थाको निर्बल बनाती जा रही हैं। नाभाजीका चिन्तन भारतके प्रति उसी प्रकारसे संवेदनात्मक था जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी का। और इसीलिये मैं यह कहनेमें किसी प्रकारका संकोच नहीं कर रहा हूँ कि गोस्वामी तुलसीदासजीकी भाँति ही श्रीनारायणदास गोस्वामी नाभाजीकी रचना–धर्मिता पूर्णतः क्रान्तिकारिणी और देशके दिशा–परिवर्तनकी एक आक्रामक पद्धति थी। हुआ भी वही। देशमें नाना प्रकारके भेदभावोंकी चर्चा चल रही थी। छुआछूत, अपने–अपने वर्णाश्रमोंके नियमोंके प्रति निरर्थक आग्रह इत्यादि हिन्दू शक्तियोंका विघटन करनेमें लगे थे। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामानन्दाचार्यजीकी पद्धतिका अनुसरण किया और जगद्गुरु आद्य रामानन्दाचार्यकी भाँति ही उन्होंने भगवत्प्रपत्तिमें अर्थात् श्रीरामकी शरणागतिमें सबको अधिकार दिया और भुशुण्डिजीसे यहाँ तक कहलवा दिया कि –

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

(मा. ७.८७क)

अर्थात् भगवानके भजनमें प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रमधर्मीको अधिकार है। बार–बार गोस्वामीजी ये कहते हुए दृष्टिगोचर होते हैं कि –

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबही ते। भयउँ भुवन भूषन तबही ते॥

(मा. २.१९६.१–२)

ठीक इसी मन्त्रका शङ्खनाद कर रहे हैं गोस्वामीजीके ही परम स्नेहपात्र श्रीनारायणदास गोस्वामी नाभाजी। इसीलिये तो उन्होंने प्रारम्भ किया ब्रह्माजीसे और विश्राम दिया लालमती माताजीके यशोगान पर। इसका तात्पर्य है कि भगवान्की भक्तिमें सभी एक पङ्क्तिमें बैठते हैं। ब्रह्माजी जैसे सृष्टिकर्ता, जो वेदोंके प्रथम ज्ञाता और ॐकारके प्रथम उद्गाता भी हैं, और लालमतीजी जैसी एक अनपढ़ महिला भी। ब्रह्माजीके चरित्रमें तो नाभाजी केवल नामसंकीर्तन करते हैं, यथा **विधि नारद शंकर सनकादिक कपिलदेव मनुभूप** (भ.मा. ७), केवल बीज शब्दसे नामसंकीर्तन ही उन्होंने पर्याप्त माना। परन्तु जब लालमती माताजीका चरित्र लिखने लगे तो नाभाजी कितने भावुक हो उठे कि उनकी भावदशा द्रष्टव्य है। अपने विश्राम वर्णन छप्पयमें नाभाजी कहते हैं –

© 2014 JRHU - All rights reserved

दुर्लभ मानुषदेहको लालमती लाहो लियो॥
गौरस्यामसों प्रीति प्रीति यमुनाकुंजनसों।
बंसीबटसों प्रीति प्रीति ब्रज रजपुंजनसों॥
गोकुल गुरुजन प्रीति प्रीति घन बारह बनसों।
पुर मथुरासों प्रीति प्रीति गिरि गोबर्धनसों॥
बास अटल बृंदा विपिन दृढ़ करि सो नागरि कियो।
दुर्लभ मानुषदेहको लालमती लाहो लियो॥

(भ.मा. १९९)

बड़े-बड़े भक्तोंकी चर्चा करनेके पश्चात् भी गोस्वामी नाभाजीको विश्राम-चर्चाके लिये एक नारी पात्र मिला। एक ओर जहाँ शङ्कराचार्य जैसे आचार्यने नारीको नरकका द्वार माना और कहा – **द्वारं किमेकं नरकस्य नारी**, वहीं तुलसीदासजी महाराजने और नाभाजी महाराजने नारीको नारायणी मानते हुए अपने वर्ण्य-विषयका विश्राम पात्र माना। नाभाजीने खुल कर कहा कि अरे! देव-दुर्लभ मनुष्य शरीरका तो लाभ लालमती माताजीने लिया। क्या व्यक्तित्व था इस महिला का! गौरश्याम श्रीराधाकृष्णसे प्रीति, पुनः उनकी स्नानविहारस्थली यमुनाकुञ्जोंसे प्रीति, पुनः उनकी विनोदस्थली वंशीवटसे प्रीति, उनकी रमणस्थली ब्रजरजके पुञ्जोंसे प्रीति, श्रीराधाकृष्णकी जन्मस्थली गोकुल-बरसाना और गुरुजनोंसे प्रीति, श्रीराधाकृष्णकी विहारस्थली व्रजके बारह वनोंसे प्रीति, मथुरा एवं गिरि-गोवर्धनसे प्रीति।

मेरे कथ्यका तात्पर्य इतना ही है कि उस समय जिस रूढ़िवादी परम्पराने भारतको निर्बल करनेकी ठान ली थी, नाभाजी महाराजने उसका विरोध करके एक विशाल और सुसंस्कृत तथा सशक्त भारतके निर्माणकी कल्पना की। इसीलिये चारों वर्णोंकी चर्चा करते हुए भी और सबके प्रति भक्तिकी उदारताकी घोषणा करते हुए भी नाभाजीने अपने वर्णनमें उन बहुसंख्यक भक्तों की चर्चाकी जो चतुर्थ वर्णके हैं, और जो भगवद्भजनमें मत्त होकर विधि-निषेधसे परे हो चुके हैं तथा जिनको श्रीरामकृष्णके अतिरिक्त कुछ भी न तो ज्ञातव्य है और न ही ध्यातव्य है। इसलिये जहाँ तक श्रीभक्तमालका मैंने अध्ययन किया है, उस अध्ययनसे यह स्पष्ट अवश्य हो जाता है कि श्रीभक्तमाल केवल कतिपय संसारके व्यवहारसे अतीत भक्तोंके ही आत्मरञ्जनका साधन नहीं है, प्रत्युत श्रीभक्तमाल उन संपूर्ण महानुभावोंका पाथेय है जो इस भारतको एक अखण्ड, सार्वभौम, सत्तासम्पन्न और सशक्त राष्ट्रके रूपमें देखना चाहते हैं।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि श्रीभक्तमालमें भगवान्‌को तीन रूपोंमें देखा गया है –

© 2014 JRHU - All rights reserved

श्रीरामरूपमें, श्रीकृष्णरूपमें और श्रीनारायणरूप में। श्रीभक्तमालके रचयिता गोस्वामी नारायणदास नाभाजी श्रीरामानन्दी वैष्णव परम्पराके संत हैं, इसमें कोई संदेह नहीं, और उनकी गुरु-परम्परा भक्तमालमें बहुत ही स्पष्ट है। जैसे पद संख्या ३६में जगद्गुरु श्रीमदाद्य रामानन्दाचार्यजीके प्रथम शिष्य अनन्तानन्दजी हैं, **यथा अनंतानंद कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावती नरहरी** (भ.मा. ३६)। और अनन्तानन्दजी महाराजके पञ्चम शिष्यके रूपमें पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराज प्रस्तुत किये गए हैं, यथा पद संख्या ३७में – **योगानंद गयेस करमचंद अल्ह पैहारी** (भ.मा. ३७)। और उन पयहारीजी महाराजके द्वितीय शिष्य हैं श्रीअग्रदासजी महाराज, यथा पदसंख्या ३९में नाभाजी कहते हैं – **कील्ह अगर केवल्ल चरण ब्रतहठी नारायन** (भ.मा. ३९)। और उन्हीं अग्रदासजीके सुयोग्यतम शिष्य हैं श्रीनारायणदास नाभाजी महाराज। वे स्वयं मङ्गलाचरणमें ही चतुर्थ दोहेमें कहते हैं –

(श्री)अग्रदेव आज्ञा दई भक्तनको जस गाउ।
भवसागरके तरनको नाहिंन और उपाउ॥

(भ.मा. ४)

और विश्राम दोहेमें स्वयं नाभाजी कहते हैं कि –

काहूके बल जोग जग कुल करनीकी आस।
भक्त नाममाला अगर उर बसौ नरायनदास॥

(भ.मा. २१४)

इससे यह निश्चित हो जाता है कि नाभाजी अर्थात् गोस्वामी नारायणदासजी महाराज श्रीअग्रदासजीके कृपापात्र हैं। वे अग्रदासजी कृष्णदास पयहारीजी महाराजके कृपापात्र हैं। निष्कर्षतः नाभाजी जगद्गुरु श्रीमदाद्य रामानन्दाचार्यजीके प्रशिष्य पयहारी श्रीकृष्णदासजीके प्रशिष्य हैं। अतः यह तो स्वाभाविक है कि नाभाजीके मस्तिष्कमें श्रीरामोपासनाका प्रभाव है, और रहना भी चाहिए। इसीलिये छठे पदमें नाभाजीने भगवान् रामके ही चरण-चिह्नोंके ध्यानकी बातकी, यथा **चरन चिन्ह रघुबीरके संतन सदा सहायका** (भ.मा. ६)। परन्तु वर्णनमें उनके मनमें कोई पक्षपात नहीं और वे प्रत्येक भक्तको समान देखते हैं, भगवान्का भक्त कोई भी हो – चाहे वह रामोपासन परम्पराका हो या कृष्णोपासन परम्पराका हो या नारायणोपासन परम्पराका हो। और इसी उदारताको भारतके भाग्यके एक क्रान्तिकारी संतकी मूलनिधि समझना चाहिये, जो जितनी पहले प्रासंगिक नहीं रही होगी उससे अधिक आज प्रासंगिक है। इसलिये मैंने यह कहा है कि श्रीनाभाजीके वर्ण्यविषयमें चतुर्थ वर्णके भक्त अधिक दिखते हैं। वे जहाँ

© 2014 URHD - All rights reserved

अनंतानंद पदपरसके लोकपाल सेते भये (भ.मा. ३७) कहकर ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न एक भक्तका यशोगान करते हैं, वहीं बारम्बार नामदेव, रैदास, कबीरदास आदिका भी वर्णन करते हैं – **नामदेव प्रतिज्ञा निर्वही ज्यों त्रेता नरहरिदासकी** (भ.मा. ४३), **संदेह ग्रंथ खंडन निपुन बानि बिमल रैदासकी** (भ.मा. ४३), **कबीर कानि राखी नहीं बरनाश्रम षट्दरसनी** (भ.मा. ६०)। किं बहुना रैदासजीकी परम्परामें विट्ठलदास रैदासीकी चर्चा करनेमें भी नाभाजीको संकोच नहीं होता, वे कहते हैं – **बिठलदास हरिभक्तिके दुहूँ हाथ लाडू लिया** (भ.मा. १७७)। जब महिला भक्तोंकी चर्चा करनी पड़ती है तब वे प्रायशः चतुर्थ वर्णकी ही महिलाओंकी चर्चा करते हैं, क्योंकि लगता यही है कि उच्च वर्णके लोगोंमें वर्णाश्रमका अभिमान होनेसे कदाचित् नाभाजीको भक्तिकी विरलता दिखती होगी। क्योंकि चतुर्थ वर्णके भक्तोंमें समाजसे पददलित होनेपर वर्णाश्रमका अभिमान तो सम्भव नहीं, अतः वहाँ भक्ति खुलकर सम्मुख आ जाती है। इसलिये तो नाभाजी कहते हैं – **ध्रुव गज पुनि प्रह्लाद राम सबरी फल साखी** (भ.मा. २०२)। नाभाजीने शबरी और कर्माबाईकी चर्चा करते समय क्या भावुकताका प्रस्तुतीकरण किया है – **हनुमंत जामवंत सुग्रीव बिभीषन सबरी खगपति** (भ.मा. ९) और इधर कर्माबाईकी चर्चा करते हुई पचासवें पदमें नाभाजी कहते हैं – **छपन भोगतें पहिल खीच करमा की भावे** (भ.मा. ५०)। महिलाओंकी चर्चा जब करनी होती है तो –

खीचनि केसी धना गोमती भक्त उपासिनि।
बादररानी बिदित गंग जमुना रैदासिनि॥

(भ.मा. १७०)

जहाँ तक मेरी अवधारणाकी बात है, मैं यह स्पष्ट कहने जा रहा हूँ कि भारतको विशाल और समृद्ध तथा सशक्त देखनेकी जो परिकल्पना गोस्वामीजीके मनमें है उसीसे मिलती-जुलती परिकल्पना नाभाजीकी भी है। अतः श्रीभक्तमालको गोस्वामीजीके विचारोंके पूरकरूपमें स्वीकारना चाहिए। और आजके समयके सन्दर्भोंमें उसी दृष्टिसे श्रीभक्तमालपर विचार भी करना चाहिए।

अब आई बात श्रीभक्तमालके व्याख्यानोंकी। तो श्रीभक्तमालके प्रथम व्याख्याता भक्तमालीके रूपमें नाभाजीने स्वयं अपने सुयोग्यतम कृपापात्र शिष्य गोविन्ददासका स्मरण किया, उन्हींको श्रीभक्तमालवाचनका अधिकार देकर उन्हें सर्वप्रथम भक्तमाली बनाया, और १९२वें पदमें कह दिया कि **भक्तरतनमाला सुधन गोबिंद कंठ बिकास किय** (भ.मा. १९२)। इसके पश्चात् श्रीभक्तमालकारकी परमपद-प्राप्तिके लगभग १०० वर्षोंके पश्चात् सत्रहवीं शताब्दीमें गौडमध्वेश्वर-

© 2014 JRHUT - All rights reserved

संप्रदायानुगामी मनोहरदासजीके कृपापात्र श्रीप्रियादासजीके मनमें भगवदीय प्रेरणा हुयी। उन्होंने श्रीभक्तमालपर कवित्तमें **भक्तिरसबोधिनी** टीका लिखी। उससे बहुत लाभ हुआ क्योंकि ऐसे गुप्त चरित्र जो नाभाजीके छप्पयमें नाममात्रके लिये आये हैं, उनका पल्लवन हुआ, और श्रीभक्तमालके वक्ताओंको कथा कहनेका अच्छा अवसर मिला। श्रोताओंको भी श्रीभक्तमालको सुननेका अवसर मिला और उनकी रुचिका संवर्धन भी हुआ। परन्तु चूँकि प्रियादासजीकी बुद्धिने कवित्तबद्ध टीका करनेका संकल्प किया और उस समयकी और आजकी परिस्थितियोंमें इतना अन्तर आ चुका है कि जिसका कदाचित् प्रियादासजीके मनमें आभास नहीं रहा होगा। वे तो सबको अपने स्तरसे समझ रहे होंगे कि सबको समझमें आ रहा है। पर उस टीकासे मूलके अर्थको समझानेमें उतनी कृतकार्यताका अनुभव नहीं देखा गया। मूलका अर्थ तो ज्यों-का-त्यों रहा, उसे तो गद्यमें समझाना होगा। इसके पश्चात् रामसनेही संप्रदायानुगत रामसनेही महाराजने **भक्तिदामगुणचित्रिणी** टीका लिखी, वह भी पद्यमें है। उससे भी मूलार्थ तो बेचारा ज्यों-का-त्यों छूट ही गया। न किसीने उसे समझाया और न किसीने उसे समझा। क्योंकि किसी भी रचनाके मूलार्थको समझनेके लिये तो गद्यका अवलम्बन लेना ही पड़ेगा। यदि रचना पद्यमें है और उसकी टीका भी यदि पद्यमें कर दी जाएगी तो मूलका अर्थ कैसे समझमें आएगा? अर्थ समझनेके लिये तो गद्यका अवलम्बन लेना पड़ेगा। इसीलिये **वाल्मीकीय रामायण** और **श्रीमद्भागवत**के टीकाकार तो संस्कृतके विद्वान् थे, तो क्या वे पद्यमें नहीं लिख सकते थे? वे जानते थे कि पद्यसे मूलार्थ कभी भी स्पष्ट नहीं हो सकता। उसके लिये तो गद्यका अवलम्बन लेना पड़ेगा क्योंकि पद्य किसीके लिये भी व्यवहारिक नहीं हो सकता। व्यावहारिक भाषामें तो गद्य ही सहायक होता है और भाषा निरन्तर गद्यमें बोली जाती है, पद्यमें नहीं। पद्य बोलनेकी भाषा नहीं, लिखनेकी भाषा है। इसलिये वाल्मीकीय रामायणके टीकाकार या भागवतजीके टीकाकार और अन्य ग्रन्थोंके भी टीकाकार पद्यमें लिखे हुए ग्रन्थोंकी गद्यमें ही तो टीका किये। श्रीधराचार्यसे प्रारम्भ करके भागवतकी आज लगभग ३७ टीकाएँ प्राप्त हैं, वे गद्यमें ही तो हैं। वाल्मीकीय रामायणकी भी लगभग १५ टीकाएँ जो प्राप्त हैं वे भी गद्यमें हैं, पद्यमें नहीं। यहाँ तक कि वाल्मीकीय रामायणकी सर्वप्रथम टीका धर्मराज युधिष्ठिरजीके अनुरोधपर वेदव्यासने **तात्पर्यदीपिका** नामसे प्रस्तुतकी वह भी गद्यमें है, आज दुर्भाग्यसे वह उपलब्ध नहीं है। उसके संस्मरण हमने गीताप्रेसकी भूमिकामें देखे। तो यदि वेदव्यास वाल्मीकीय रामायणकी टीका गद्यमें कर सकते हैं, जबकि वे तो पद्य लिखनेमें समर्थ थे – उन्होंने पुराण और महाभारत मिलाकर पाँच लाख श्लोकोंकी रचना की जो सब पद्यमें है – तब इससे

© 2014 URHU - All rights reserved

यह समझनेमें किसीको भी संशय नहीं होना चाहिए कि मूलार्थ समझानेके लिये गद्य ही अपेक्षित होता है, न कि पद्य। इसलिये वेदोंके भाष्य भी गद्यमें लिखे गए। अन्य पद्यमें लिखे गए बृहत्त्रयी, लघुत्रयीकी टीकाएँ भी गद्यमें उपलब्ध होती हैं न कि पद्य में। क्योंकि व्यवहारमें भातसे भात नहीं खाया जा सकता, भातको तो दालमें ही मिलाके खाना पड़ेगा। इसलिये प्रियादासजीकी टीका **भक्तिरसबोधिनी** और रामसनेहीदासजीकी टीका **भक्तिदामगुणचित्रिणी**में संतोंके चरित्रोंको तो स्पष्ट किया, पर नाभाजीने मूलमें क्या कहा इसका अभिप्राय समझमें नहीं आया, और न तो उन्होंने समझाया। श्रीवैष्णवदास महाराजने श्रीभक्तमालका माहात्म्य लिखा। इसके पश्चात् धीरे-धीरे श्रीभक्तमालकी कथाका प्रारम्भ हुआ जिससे मूलार्थके स्पष्टीकरणकी बहुत चेष्टा की गई। बीसवीं शताब्दीमें श्रीवृन्दावनमें जगन्नाथप्रसादी भक्तमालीजीका जब प्रादुर्भाव हुआ तो उनके व्याख्यानसे श्रीभक्तमालका बहुत प्रचार-प्रसार हुआ, और बहुशः लोगोंका मन मूलार्थके समझनेमें गया। फिर बीसवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें मेरे अत्यन्त स्नेही मित्र श्रीगणेशदासजी भक्तमालीजीने एक **भक्तिवल्लभा** नामक टिप्पणी लिखी। उसमें कुछ मूलार्थ समझानेका प्रयास किया गया। क्योंकि टिप्पणीका आकार छोटा था, अतः उतना लाभ नहीं हो सका जितना अपेक्षित था। और श्रीभक्तमालकी जो मुद्रित पुस्तकें मिलीं वे भी प्रियादासजीकी टीकाके साथ मिलीं।

सर्वप्रथम अपने विद्यार्थी-जीवनके पश्चात् जब मैंने श्रीवाल्मीकीय रामायण और भागवतकी कथाके वाचनक्षेत्रमें प्रवेश किया तो क्योंकि मेरा स्वभाव अनुसन्धानात्मक था, मैं स्वयं अनुसन्धाता था, अनुसन्धित्सा मेरी अपनी एक पद्धति और विचारसरणि थी, तो मेरे मनमें विचार आया कि क्या श्रीभक्तमालजीका स्वतन्त्र मूल कहीं मिल जाएगा जो इस टीकासे अलग हो। १९७८में मैंने श्रीवृन्दावन जाकर उस समय सुदामाकुटीमें विराज रहे श्रीरामेश्वरदासजीसे चर्चा की। वे उस समय मुझे नहीं जानते थे। मेरी वेषभूषाको देखकर वे मुझे विद्यार्थी मान रहे थे। मैंने पूछा कि क्या श्रीभक्तमालका मूल ग्रन्थ उपलब्ध हो जाएगा? तो उन्होंने कहा – "अरे बाबा! टीकाके साथ ही मिलता है।" और उन्होंने विनोदमें मेरे साथ गए हुए एक संतसे कहा – "अरे! ये तो विद्वान्, तुम साधु। तुम्हारा इनसे कैसे संपर्क हो गया?" और आगे कहा **नर बानरहि संग कहु कैसे** (मा. ५.१३.११)। यद्यपि उस वाक्यने मेरे मनको आन्दोलित किया और मुझे लगा कि मेरे स्वाभिमानपर इनका प्रहार है, पर मैंने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। उसी समय मैंने संकल्प ले लिया कि अब श्रीभक्तमालपर प्रवचन करके महाराजजीके **नर बानरहिं संग कहु कैसे** (मा. ५.१३.११) इस वाक्यका अवश्य उत्तर दूँगा।

© 2014 JRHU - All rights reserved

संयोगसे धीरे-धीरे मेरे वक्तव्योंको संत-समाजने, वैष्णव-समाजने, और सभी गृहस्थ नर-नारियोंने बहुशः स्वीकारा, प्रशंसित किया और कालान्तरमें जाकर जब मैं जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पदपर अभिषिक्त हुआ और उस परम्पराकी सेवा करते हुए मैंने २५ वर्ष संपन्न कर लिये, तब मेरे मनमें आया कि जैसे मैंने प्रस्थानत्रयीपर भाष्य रचकर संप्रदायकी सेवाकी है, जिस प्रकार श्रीरामचरितमानसजीपर भावार्थबोधिनी टीका लिखकर श्रीरामचरितमानसके बहुत-से गूढ़ प्रसंगोंको पुस्तकनिबद्ध करके सेवाकी, उसी प्रकार मुझको अब श्रीभक्तमालकी भी सेवा करनी चाहिए क्योंकि यह श्रीरामानन्दी संप्रदायकी बहुत बड़ी निधि है। अद्वितीय नहीं तो द्वितीय निधि कहना चाहिए। यदि श्रीरामचरितमानस अद्वितीय निधि है तो श्रीभक्तमाल भी श्रीरामानन्दी संप्रदायकी द्वितीय निधि है। इस संकल्पको साकार करनेके लिये फिर मैंने पहला कार्य यह किया कि श्रीभक्तमालजीको अक्षरशः कण्ठस्थ किया, और लगभग उसके शताधिक पाठ किये। फिर मेरे मनमें यह संकल्प जगा कि अब श्रीभक्तमालकी एक संक्षिप्त टीका लिखनी चाहिए जो मूलके अर्थको कह रही हो। दैवयोगसे श्रीभक्तमालके व्याख्यानके लिये मेरी १३ जनवरीसे १९ जनवरी २०१४ पर्यन्त कथा भी निश्चित की गयी, उसका संस्कार चैनलके माध्यमसे जीवंत प्रसारण भी निश्चित हुआ और मेरे अनेकानेक परिकर भी मुझसे अनुरोध करने लगे कि जगद्गुरुजी! गाजियाबादकी श्रीभक्तमालकथामें सबको श्रीभक्तमालपर एक मूलार्थ समझाने वाली टीका उपलब्ध होनी चाहिए। मुझे धर्मसंकट था कि यह कार्य किया कैसे जाए। मेरे दीक्षित तीन सुयोग्य शिष्य मुझे उपलब्ध हुए। उन्होंने कहा कि यदि गुरुदेव शङ्कर रूप हैं तो हम उनके नेत्र बनेंगे। वे हैं पटनासे श्रीरामाधार शर्मा, लखनऊमें जन्मे और हॉङ्ग-कॉङ्गमें सेवारत श्रीनित्यानन्द मिश्र, और कानपुरमें जन्मे और बेंगलूरुमें सेवारत श्रीमनीष शुक्ल। अब क्या था। मेरे मनमें और रचना-धर्मिता प्रस्फुटित हुई और थोड़े ही दिनोंमें मैंने श्रीभक्तमालके मूलार्थपर **मूलार्थबोधिनी** नामक टीका प्रस्तुत कर दी। मुझे इस बातका हर्ष है कि इस टीकाकी परिकल्पना और रचनामें मुझे मेरी अग्रजा डॉ. कुमारी गीतादेवी मिश्रका बहुत सहयोग मिला। और मैं एक बालक परिकरको कभी विस्मृत नहीं कर पाऊँगा, जिन्होंने इसके विषयसंकलनमें तथा लेखन-वाचनमें मुझे बहुत सहयोग दिया, और भक्तमाल कण्ठस्थ करानेमें पूर्ण भूमिका निभाई। वे हैं मेरे निजी सहायक आयुष्मान् जय मिश्र। जब-जब भी वाचनकी मुझे आवश्यकता हुई, चाहे दिन हो या रात, किसी भी समय मैंने जय मिश्रको उठाया तो उन्होंने मेरी अपेक्षाओंकी पूर्ति की। मैं उनको बहुत-बहुत आशीर्वाद ज्ञापित करता हूँ। पश्चात् मुद्रणमें धनकी बात आयी – मैं तो स्वयं निष्किञ्चन ब्राह्मण और आचार्य। श्रीराम-कथाका संपूर्ण धन मैं विकलाङ्ग विश्वविद्यालयको ही दे दिया करता

© 2014 JRHP - All rights reserved

हूँ इसलिये मेरे पास तो एक भी पैसा नहीं। तब मेरी सुयोग्य शिष्या अखण्ड सौभाग्यवती श्रीमती सरला बियानी, जो वर्तमानमें अहमदाबादमें रह रही हैं, उन्होंने यह सेवा स्वीकार कर ली। मैं उनको बहुत-बहुत आशीर्वाद देता हूँ।

अन्ततोगत्वा मैं प्रियादाससे लेकर आज तकके भक्तमालके सभी व्याख्याकारोंका बहुत-बहुत आभारी हूँ, जिनमें प्रियादासजी, रामसनेहीदासजी, श्रीभक्तमालके टिप्पणीकर्ता मित्र श्रीगणेशदासजी जिनका वर्तमानमें साकेतवास हो चुका है, श्रीभक्तमालकी बीसवीं शताब्दीके प्रसिद्ध व्याख्याकार श्रीजगन्नाथप्रसाद भक्तमालीजी महाराज, और मेरे विद्यार्थी-कल्प श्रीरामकृपालदास महाराज चित्रकूटी जिन्होंने एक खण्डमें श्रीभक्तमालको छपाकर जनताको बहुत लाभ दिया। गतवर्ष ही गीताप्रेससे कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित भक्तमालाङ्कके संकलनकर्ता महानुभाव और मेरे ही विद्यार्थी-कल्प मेरे मित्र गणेशदासजीके कृपापात्र और श्रीभक्तमालके बड़े प्रामाणिक वक्ता श्रीमलूकपीठाधीश्वर राजेन्द्रदासजी और अन्यान्य वैष्णव तथा मेरे साकेतवासी गुरुभ्राता श्रीनारायणदासजी भक्तमाली, जो **मामाजी**के नामसे प्रसिद्ध थे और आज भी प्रसिद्ध हैं – इन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। मैं अपेक्षा करता हूँ कि यह मेरी मूलार्थबोधिनी टीका श्रीभक्तमालके मूलको समझानेमें बहुत कृतकार्य होगी। अन्तमें मैं एक बात कहकर इस प्राङ्निवेदनको विश्राम देना चाहूँगा –

कोउ कहे भक्तमाल परम कठिन ग्रन्थ
कोउ कहे भक्तमाल पंडित पछार है।
कोउ कहे भक्तमाल सतत दुरूह वस्तु
कोउ कहे भक्तमाल पंडित जीवमार है।
कोउ कहे भक्तमाल संतनकी निधि दिव्य
कोउ कहे भक्तमाल पंडित फटकार है।

परन्तु –

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य रामभद्राचार्य
कहें भक्तमाल भव्य पंडित शृंगार है।।

क्योंकि जो पण्डित होगा वही श्रीभक्तमाल पढ़ेगा। पण्डितका अर्थ केवल शास्त्रार्थी पण्डितसे ही नहीं समझना चाहिए, पण्डित वही है जो भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम करता है। यथा –

© 2014 JPHD - All rights reserved

सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोई गुन गृह बिज्ञान अखंडित॥
दक्ष सकल लच्छन जुत सोई। जाके पद सरोज रति होई॥

(मा. ७.४९.७–८)

मैं यह श्रीभक्तमालकी मूलार्थबोधिनी टीका अपने उपास्य, अपनी जिजीविषाके आधार और अपने जीवनके सर्वस्व वसिष्ठानन्दवर्धन श्रीराघवको ही समर्पित करता हूँ।

त्वदीयं वस्तु भो राम तुभ्यमेव समर्पये।
गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रसीद शिशुराघव॥
श्रीराघवः शं तनोतु।

© 2014 JRHU - All rights reserved

© 2014 JRHU - All rights reserved

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

पूर्वार्ध

भक्तान् भक्तिं रामभद्राचार्यो नत्वा हरिं गुरून्।
श्रीभक्तमाले कुरुते टीकां मूलार्थबोधिनीम्॥
जयति जगदघालं भग्नभक्ताधिजालं
हरिजनगुणमालं जुष्टराजत्तमालम्।
विभुविरुदविशालं प्रेमपीयूषपालं
हरिहृदयरसालं भास्वरं भक्तमालम्॥
प्रभू गौरश्यामौ विजितरतिकामौ तनुरुचा
विभू आत्मारामौ त्रिभुवनललामौ गुणनिधी।
जनारामौ रामौ प्रथितपरिणामौ सुखकरौ
स्तुवे सीतारामौ जनदृगभिरामौ गिरिधरः॥

॥ १ ॥

भक्त भक्ति भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इनके पद बंदन किए नासहिं विघ्न अनेक॥

मूलार्थ – **भक्त** अर्थात् भगवान्के श्रीचरणारविन्दके अनुरागी भक्तवृन्द, भगवान्की परमप्रेमा रूपिणी **भक्ति**, स्वयं षडैश्वर्यसंपन्न श्रीरामश्रीकृष्णश्रीनारायणान्यतम **भगवान्**, और उनके तत्त्वका उपदेश करनेवाले **श्रीगुरुदेव** – ये चारों नाम और स्वरूपसे चार-चार दिखते हैं अर्थात् इनके पृथक्-पृथक् चार नाम हैं और पृथक्-पृथक् चार शरीर भी हैं। परन्तु वस्तुतः ये एक ही हैं, अर्थात् एक-दूसरेसे अभिन्न हैं, और एक परमेश्वर ही चार रूपोंमें हमें दिख रहे हैं। इनके श्रीचरणोंका वन्दन करनेसे अनेक विघ्न नष्ट हो जाते हैं। इसलिये मैं नारायणदास नाभा इन चारोंके श्रीचरणकमलोंका वन्दन कर रहा हूँ।

©2014 URHU - All rights reserved

॥ २ ॥

मंगल आदि बिचार रह बस्तु न और अनूप।
हरिजनको जस गावते हरिजन मंगलरूप॥

मूलार्थ – श्रीनाभाजी कहते हैं कि श्रीहरि भगवान्‌के भक्तोंके यशको गाते समय जब आदिमङ्गलका विचार किया गया तो यह निष्कर्ष निकला कि भगवान्‌के भक्तोंकी अपेक्षा और कोई दूसरी वस्तु अनुपम अर्थात् उत्कृष्ट है ही नहीं। अर्थात् भगवान्‌के भक्त ही स्वयं अनुपम हैं, उनका यशोगान अनुपम है। इसलिये भगवद्भक्तोंके यशोगानके प्रारम्भमें किसी और मङ्गलकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भगवान्‌के भक्त स्वयं मङ्गलस्वरूप हैं।

॥ ३ ॥

संतन निर्नय कियो मथि श्रुति पुरान इतिहास।
भजिबे को दोई सुघर कै हरि कै हरिदास॥

मूलार्थ – संतोंने चारों वेदोंका, अठारहों पुराणोंका, एवं श्रीरामायण तथा श्रीमहाभारत – इन दोनों इतिहासोंका आलोडन करके यह निर्णय कर लिया है कि भजन करनेके लिये दोनों ही श्रेष्ठ हैं – या श्रीहरिका भजन किया जाए या श्रीहरिके दासोंका भजन किया जाए, वस्तुतस्तु दोनोंका ही भजन करना अनिवार्य है, क्योंकि भगवद्भक्तोंके भजनसे भगवान् प्रसन्न होंगे और भगवान्‌का भजन करनेसे भगवद्भक्त प्रसन्न होंगे।

॥ ४ ॥

(श्री)अग्रदेव आज्ञा दई भक्तनको जस गाउ।
भवसागरके तरनको नाहिन और उपाउ॥

मूलार्थ – नाभाजी कहते हैं कि मुझको मेरे सद्गुरुदेव श्रीअग्रदेव अर्थात् श्रीअग्रदासजीने यह आज्ञा दी कि हे नारायणदास नाभा! तुम भगवान्‌के भक्तोंका ही यश गाओ, क्योंकि भवसागरसे पार होनेके लिये और कोई दूसरा उपाय है ही नहीं। एकमात्र भगवद्भक्तोंका यशोगान ही भवसागरसे तरनेका उपाय है।

श्रीनाभाजीके जीवनवृत्तके संबन्धमें एक महत्त्वपूर्ण, प्रेरणास्पद तथा रोचक प्रसिद्धि है कि हनुमान्‌वंश अर्थात् श्रीहनुमान्‌जी द्वारा प्रचारित श्रीरामभक्तिकी परम्परामें श्रीनाभाजीका जन्म हुआ। वे जन्मना ब्राह्मण थे। जन्मसे ही नाभाजीके पास दोनों नेत्रोंके चिह्न भी नहीं थे। नाभाजी अत्यन्त

© 2014 JRHU - All rights reserved

दीन परिवारमें जन्मे थे और उनकी दृष्टिबाधित दशा और दरिद्रताको देखकर उनकी माताजीने अपने पञ्चवर्षीय अन्धबालकको दुष्कालसे पीड़ित होनेके कारण एक निर्जन वनमें छोड़ दिया था। नाभाजी महाराज अनाथ हो गए और दृष्टिहीनताकी विडम्बनामें इतस्ततः भटक रहे थे। संयोगसे वहाँसे निकल पड़े थे श्रीपतितपावन पयहारीजी श्रीकृष्णदासजीके अनन्य कृपापात्र युगलसंतचरण – श्रीकील्हदासजी एवं श्रीअग्रदासजी। उन दोनों संतोंकी दृष्टि माताके द्वारा परित्यक्त, अनाथ, निरुपाय, क्षुधा-पिपासासे व्याकुल इस दृष्टिहीन बालकपर पड़ी। संतोंका हृदय पिघल गया। वे बालकके पास आए। बालक तो उनको देख ही नहीं रहा था। पूछा – "वत्स! कहाँसे आ रहे हो?" बालकने उत्तर दिया – श्रीसीतारामजीके चरणोंसे।" पूछा – "कहाँ जाओगे?" बालकने उत्तर दिया – "जहाँ भगवान् और आप श्रीसंतगण भेज देंगे, वहीं चला जाऊँगा।" बालककी प्रत्युत्पन्न बुद्धि देखकर संतचरण भावुक हो उठे। श्रीकील्हदासजीने करुणा करते हुए अपने कमण्डलुका जल बालकके नेत्रस्थानपर छिड़क दिया। उनकी सिद्धिके बलसे बालकके नेत्र आ गए और बालकने प्रथम बार ही नवागत नेत्रोंसे इन युगल संत-चरणोंके दर्शन किये। धन्य हो गया बालक। नाभाजीको निष्किञ्चन देखकर कील्हदासजी और अग्रदासजी उसे अपने संग गलता ले आए, और कील्हदासजीने अपने छोटे गुरुभ्राता अग्रदासको इस बालकको श्रीरामानन्दीय विरक्त परम्परामें दीक्षित करनेका आदेश दिया। अग्रदासजीने बालकको विरक्त परम्परामें पञ्चसंस्कारविधिसे दीक्षित किया और इनका विरक्तपरम्पराका नाम रखा **नारायणदास**। नारायणदास सद्गुरुदेव भगवान्‌की आज्ञासे गलतेमें चल रही संतसेवामें रुचि लेने लगे। आने वाले प्रत्येक संतका वे चरणप्रक्षालन करते, उन्हें प्रसाद पवाते और उनका उच्छिष्ट अर्थात् जूठन प्रसाद लेकर स्वयं अपनी क्षुधा बुझाते थे। संत-सेवासे जब अवसर मिलता तो वे अपने गुरुदेव श्रीअग्रदासजी महाराजकी सेवा भी करते थे।

एक दिन जब श्रीअग्रदासजी महाराज श्रीसीतारामजीकी मानसी सेवा कर रहे थे, उस समय नारायणदासजी पंखा झल रहे थे। संयोगसे उसी समय अग्रदासजीके किसी भक्तकी नाव समुद्रकी भँवरमें अटक गई थी, फँस गयी थी। उन्होंने अग्रदासजी महाराजका स्मरण किया। भक्तके मानसिक स्मरणसे अग्रदासजी महाराजकी मानसी सेवामें थोड़ी-सी बाधा पड़ रही थी। नाभाजीने उनकी मनोदशाको भाँप लिया और अपने पंखेको थोड़ा-सा वेगसे चलाया और उसकी वायुसे समुद्रकी भँवरमें फँसी हुई भक्तकी नाव आगे चली गई। नाभाजीने विनम्रतासे प्रार्थना की – "गुरुदेव! आप प्रेमसे श्रीसीतारामजीकी मानसी सेवा कीजिये। आपके संकटका मैंने अपने पंखेकी वायुसे समाधान

© 2014 URHD - All rights reserved

कर दिया है।" अग्रदासजी अपने शिष्यकी इस चामत्कारिक परिस्थितिको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा – "बेटे! तुमने मेरी नाभिकी ही परिस्थिति समझ ली, इसलिये आजसे तुम्हारा उपनाम मैं **नाभा** रख रहा हूँ।"

नाभा नामके सम्मानके संबन्धमें संतोंके मुखसे एक और कथा सुनी गई है। वह यह कि अग्रदासजी भगवान् श्रीसीतारामजीकी मानसी सेवा कर रहे थे। मानसी सेवामें प्रभुको मुकुट धारण करवा दिया था और माला धारण करानी थी। मानसी भावनामें माला छोटी थी जो मुकुटके ऊपरसे धारण करानेमें कुछ जटिल-सी लग रही थी। अग्रदासजी प्रयास कर रहे थे, परन्तु वह माला भगवान् श्रीसीतारामजीके गलेमें जा नहीं रही थी। उसी समय नारायणदासने कहा – "गुरुदेव! पहले मानसी सेवामें मुकुट उतार लिया जाए, माला धारण कराकर फिर मुकुट धारण करा दिया जाए, सब ठीक हो जाएगा।" तब अग्रदासजीने कहा कि –"तुमने तो मेरी नाभिकी ही बात जान ली, आजसे तुम्हारा उपनाम **नाभा** होगा। और नाभा! तुम भगवान् नारायणके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीके अवतार हो। तुममें ब्रह्माजीका अंश है। ब्रह्माजी भक्ति संप्रदायके प्रथम आचार्य हैं। इसलिये जैसे ब्रह्माजीकी प्रेरणासे वाल्मीकीय रामायणकी रचना हुई उसी प्रकार तुम, जोकि ब्रह्माजीके अंश हो, भक्तोंका ही यशोगान करो। श्रीरामकृष्णके यशोगानके लिये तो भगवान्ने कलिकालमें तुलसीदास और सूरदासको नियुक्त कर दिया है। श्रीरामका यशोगान करनेके लिये नियुक्त हुए हैं गोस्वामी तुलसीदास, जिन्होंने रामचरितमानस द्वारा श्रीरामचरितकी १०० करोड़ रामायणोंका इतिवृत्त गागरमें सागरकी भाँति संक्षिप्त किन्तु विशिष्ट शैलीमें प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्णका यशोगान करनेके लियेअद्भुत दिव्यदृष्टि-संपन्न महात्मा सूरदासजीको भगवान्ने नियुक्त किया है, जिन्होंने सूरसागरकी रचना कर दी है। अतः अब तुम भक्तोंका ही यशोगान करो। **भवसागर के तरन को** – भवसागर पार करनेके लिये और कोई दूसरा उपाय नहीं है। भवसागर पार करनेकी नाव शुद्ध संतोंके चरण हैं। अतः भक्तोंका यश गाओ। चिन्ता मत करना, जैसे तुमने मेरी नाभिकी बात जान ली उसी प्रकार जिन भक्तचरणका तुम वर्णन करोगे वे अपने उपयुक्त चरित्रोंको तुम्हारे मनमें स्वयं प्रतिबिम्बित कर देंगे। निर्भीक हो जाओ। भक्तोंका यश गाओ। कल्याण होगा।"

उसी प्रकार आज्ञाका पालन करते हुए नाभाजी कह रहे हैं कि मैं अब भक्तमालकी सरस रचना कर रहा हूँ।

© 2014 URHD - All rights reserved